

वैदिक परम्परा में योग की अवधारणा

• प्रवेश जाटव व प्रो० गणेश शंकर गिरि

सारांश — वर्तमान में संसार के समस्त जनमानस ने माना है कि योग एक जीवन पद्धति है जिसे दिनचर्या का एक महत्वपूर्ण अंग बनाया जाना चाहिए। वेदों को संसार के समस्त रचनाओं में सबसे प्राचीन बनाया जाता है और यह प्रमाणिक भी हो चुका है। सृष्टि रचना के उपरान्त चार ऋषि अग्नि, वायु, आदित्य एवं अंगिरा जिन्हें स्वयं परमात्मा ने वेदों का ज्ञान प्रदान किया। वेदों के ज्ञान के साथ साथ योग विद्या का भी वर्णन किया। अतः स्पष्ट है कि इन ऋषियों ने योग साधना के बाद ही वैदिक मंत्रों के दर्शन किये होंगे। इसलिये वेदों में योग विषयक वर्णन कई स्थानों पर प्राप्त होता है। भारतीय ग्रंथों में वेदों को समस्त ग्रंथों का प्राण माना जाता है और यह स्वतः प्रमाणित ग्रंथ भी है। वेद एक ऐसा ग्रंथ है जो सूर्य के समान स्वयं तो प्रकाशित है तथा वह अपने साथ संसार के समस्त पदार्थों को भी प्रकाशित करता है। वेदों का मूल विषय है अध्यात्म के उच्च शिखर तक पहुँचना। इन समस्त क्रियाओं में योग साधना को महत्वपूर्ण माना है। वेदों के विभाजित ग्रंथ ब्राह्मण और आरण्यक में ज्ञान की समस्त अवस्थाओं का वर्णन मिलता है जिसमें पंच ज्ञानेन्द्रियां व कमेन्द्रिया पंच वायु व महाभूत तथा मन द्वारा निर्मित स्थूल शरीर का वर्णन दिया गया है। योग साधना को वेदों में दिये गये समस्त कार्यों को यज्ञादि से पूर्व में करने वाला अभ्यास बतलाया गया है। इसके साथ ही वेदों में नाड़ियों व प्राणों का भी वर्णन मिलता है तथा वेदों में यम-नियम, सुपाच्य आहार, शरीर क्रिया विधि, मन्त्रयोग व लययोग का उल्लेख मिलता है। इन समस्त प्रक्रिया के साथ-साथ वेदों में योग का मूल उद्देश्य आत्मा से परमात्मा की एकता का मुख्य साधन भी इसमें बतलाया है।

कूट शब्द : वैदिक, परमकल्याण, आध्यात्मिक, आत्मा-परमात्मा, व्रत, यम-नियम, उपासना।

प्रस्तावना — योग शास्त्र भारत वर्ष की अमूल्य सम्पत्ति है¹ जो प्राचीन काल से अनवरत रूप से गुरु-शिष्य परम्परा के साथ चलती आ रही है। यह एक ऐसा शास्त्र है जिसमें वाद-विवाद के लिये कोई स्थान ही नहीं है। योग एक ऐसी कला है जिसे अनेक लोगों ने अपने व्यवहार में उतार कर कई प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त की हैं। 600-800 ई.पू. तक वेदों में योग के अर्थ को इन्द्रियों को प्रवृत्त करना था। समय के साथ-साथ जब वैदिक साहित्य की लिखित रचना हुई 500-600 ई.पू. में तब योग का अर्थ इन्द्रियों को नियन्त्रण करना परिभाषित किया गया।² ऋग्वेद में योग विषयक वर्णन मिलता है जो कि विश्व का सबसे प्राचीनतम ग्रंथ है। योग का उद्भव भी वेदों से ही माना जाता है। किन्हीं विचारकों का मत है कि योग सिन्धुकालीन सभ्यता की देन है। किन्तु स्वामी शंकरानन्द ने इसे स्पष्ट करते हुये कहा है कि सिन्धुकालीन सभ्यता वैदिक सभ्यता का ही अंग है।³ इससे यह स्पष्ट होता है कि योग का उद्भव वैदिक परम्परा से हुआ है।

सर्वप्रथम ऋग्वेद में संकेत मिलते हैं कि योग साधना के द्वारा जो मनुष्य अनेक सिद्धियों को प्राप्त करने की चाह रखते हैं उन्हें देह में बहने वाली नाड़ियों को मूलबन्ध एवं जालन्धर की सहायता से कुम्भक आदि लगाकर प्राणों को नियन्त्रण करते हैं तो सम्पूर्ण देह में एक विशेष ऊर्जा का संचार होने लगता है।⁴ सामवेद ग्रंथ में 'रथेभिः' शब्द का उल्लेख मिलता है जिसका अर्थ है योग साधना व ईश्वर प्राप्ति हेतु शरीर में जीवात्मा का निवास होना आवश्यक है। परन्तु केवल देह से साधना असम्भव है एवं परमात्मा को प्राप्त करना भी सम्भव नहीं है।⁵ इसके साथ ही सामवेद में सुषुम्ना नाड़ी तथा प्राणायाम का भी वर्णन दिया गया है। प्राणायाम के माध्यम से समस्त द्वेष और क्लेश वृत्तियाँ समाप्त हो जाती हैं।⁶ यजुर्वेद में योगाभ्यास के माध्यम से शरीर के अवयव जैसे- वाणी, नेत्र, श्रोत, नाभि, उपस्थ, वायु की शुद्धि का उल्लेख मिलता है।⁷

वेदों में योग — पूर्व के संकेतों से स्पष्ट है कि वेदों में योग का उल्लेख विभिन्न स्थानों पर मिलता है। यजुर्वेद के श्लोक संख्या 1 से 5 में योग साधना का उल्लेख किया गया है।

प्रारम्भिक श्लोकों में ब्रह्म की उपासना की गई है इसके उपरान्त उपासना करने वाले एवं इसका मार्ग दिखाने वालों के लिये परमात्मा के वचन हैं "जब तुम सनातन ब्रह्म का सत्य, प्रेम, सेवा एवं श्रद्धाभाव से स्वयं की आत्मा को एकचित्त

- शोध छात्र, योग शिक्षा विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.),

व

- शोध निर्देशक, योग शिक्षा विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

रखकर नमस्कारादि भाव से मेरी उपासना करोगे तब मैं तुम दोनों को आशीर्वाद दूंगा कि तुम्हें जिस प्रकार परमविद्वान को धर्म मार्ग यथावत प्राप्त होता है तुम्हें भी उसी प्रकार सत्यकिर्ती प्राप्त हो।” इसके पश्चात् मुमुक्षुओं को संदेश देते हैं कि जो लोग पूर्व में मोक्ष सुख को प्राप्त कर चुके उनके शरणागत जाकर तुम भी मोक्षसुख प्राप्त करें।⁸ वैदिक परम्परा में योग के प्रणेता परमात्मा हिरण्यगर्भ को माना है।⁹

ऋग्वेद में योग—“यस्माद्वेते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन स धीनां योगमिन्वति।”¹⁰

अर्थात् जो विद्वान बिना योग के कोई भी कर्म करते हैं वे पूर्ण नहीं होते। वेदों में योग के अनुष्ठान के बिना कर्मों को करना अनुचित बताया है। इस प्रकार योग का वेदों में बहुत महत्व बताया है। योग का मूल अर्थ चित्त में आने वाले विकारों को दूर करना। इसके पश्चात् समाधि के विषय में वर्णन मिलता है।

“स घा नो योग आभुवत् स राये स पुरध्याम् गमद् वाजेभिरा स नः।”¹¹

अर्थात् परमात्मा के सानिध्य से हमें समाधि सिद्ध हो तथा ईश्वर की कृपा से विवेक ख्याति व ऋतम्भरा प्रज्ञा की प्राप्ति हो। इसके उपरान्त योग सिद्धि हेतु ईश्वर से प्रार्थना की गई है। जिसका उल्लेख वेदों में निम्न प्रकार मिलता है।

“योगे योगे तवस्तरं वाजेवाजे ध्यामहे। सखाय इन्द्रमूतये।।”¹²

अर्थात् हम अभ्यासी जब योग समाधि हेतु साधना करते हैं तो उसमें आने वाले विघ्नों को दूर करने के लिये ऐश्वर्यवान परमात्मा इन्द्र से प्रार्थना करते हैं। इस प्रकार योग साधना में परमात्मा की शरण लेना साधना हेतु सार्थक माना गया है और इसलिये हम परमात्मा का आवाहन करते हैं। वेदों में दिये योगशास्त्र का मूल उद्देश्य है आत्मा व परमात्मा का एकरूप होना। इसके लिए साधक की अभीप्सा ऋग्वेद के इस श्लोक में स्पष्ट रूप व्यक्त की गई है।

“यदग्ने स्यामहं त्वं वां द्या स्या अहम्। स्युष्टे सत्या इहाशिषः।”¹³

अर्थात् हे अग्निदेव! यदि मैं तू अर्थात् समृद्धि सम्पन्न हो जाऊं या तू मैं हो जाये तो मेरे लिये तेरे सभी आशीर्वाद सत्य सिद्ध हो जायें। वैदिक श्लोको के माध्यम से हमें यह ज्ञात होता है कि कोई विशाल ऊर्जा है जिसके स्वरूप का वर्णन अभेद ज्योति, परमपद, परमव्योम आदि नामों से ऋग्वेद में मिलता है। इसी ऊर्जा के उद्देश्य से योग साधना की आकांक्षा की गई है।

वेदों में योग सम्मत शरीर विज्ञान — वेदों में शरीर विज्ञान का उल्लेख अथर्ववेद में किया गया है। अथर्ववेद में इस शरीर की तुलना देवताओं के निवासस्थान, अयोध्यापूरी से की गई है, अथवा इसमें आठ चक्र व नवद्वारों का वर्णन मिलता है।

“अष्टचक्र नवद्वारा देवानां पूरोयोध्या।

तस्या हिरण्यमयोः कोशः सवर्गो ज्योतिषावृतः।

तस्मिन् हिरण्यमये कोशेऽयरे त्रिपतिष्ठिते।

तस्मिन् सद् यक्षमात्मन्वत् तद्वै ब्रह्मविदोबिदुः।।”¹⁴

अर्थात् हमारा यह शरीर आठ चक्र एवं नवद्वारों से युक्त एक देवनगरी है तथा इसमें ज्योति व आनन्द से ओत-प्रोत हिरण्यमय कोश है। इस आत्मस्वरूप परब्रह्म को वे विद्वानजन जानते हैं। जिन्होंने ब्रह्मज्ञान का साक्षात्कार किया है। इसी के साथ योग शास्त्र में किये गये शब्दों का भी उल्लेख मिलता है।

“पुण्यरीकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणैरभिरावृतम्।

तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः।।”¹⁵

अर्थात् चक्र, पूण्डरीक, नवद्वार त्रिगुण आदि शब्द योग शास्त्र में परिभाषित किये जाते हैं। वेदों में शरीर में बहने वाली नाड़ीयाँ व प्राणों का भी वर्णन मिलता है। प्राणों के महत्व का ऋग्वेद में विस्तार से उल्लेख किया गया है। प्राणों को इन्द्रियों का अभिभावक माना है। इसी प्रकार वेदों में लययोग का भी वर्णन मिलता है।

“क चित्रका त्रिवृतो रथस्य क त्रयो बन्धुरो मे सनीलाः।

कदा योगो वाजिनो रास्मस्य येन यज्ञं नासत्यो पयाथः।।”¹⁶

अर्थात् यह शरीर रूपी रथ पंचमहाभूतों से मिलकर बना है। इस रथ के मध्य में नीचे मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर नामक चक्र है। हमें ज्ञात नहीं की इनका विशेष स्थान कहा है। “जीवधारक बन्धु पुष्प के समान नितान्त रक्तवर्ण कंदर्प नामक वायु कहाँ है।” अर्थात् हम इससे वंचित हैं कि इसका मुख्य स्थान कौनसा है। ऊपर की और तीन चक्र अनाहत, विशुद्धि और आज्ञा अथवा ब्रह्म का मुख्य स्थान कहाँ है? हम इस ज्ञान से भी वंचित हैं। हमें यह भी ज्ञात नहीं की शिवशक्ति का मिलन

अर्थात् कुण्डलिनी लय कहां होता है। हे परमयोगी परमात्मा आपके मार्गदर्शन से लयसम्बन्धी यह समस्त ज्ञान मुझे दीजिये, जिससे मैं लययोग की साधना कर सकूँ।

वेदों में यम-नियम से हम भलीभांति परिचित हैं इनका वर्णन कई योगशास्त्रों में देखने को मिलता है। वेदों से इसकी परम्परा चली आ रही है। वेदों में कई स्थानों पर सत्य, अहिंसा, मधुरवाक्य के संकेत मिलते हैं। यम-नियम के समस्त अंगों का वर्णन भी इसमें सुन्दर तरीके से परिभाषित किया गया है।

“ऋतधीतय आ गत सत्यधर्माणो अध्वरम्।”¹⁷

अर्थात् जो विद्वानजन सत्य मार्ग का चयन करते हैं तथा सत् कर्म करते हैं वे सत्कर्मियों का व्यवहार अहिंसा रूपी हो ऐसी कामना करते हैं। इसके उपरान्त धन की अस्थिरता का वर्णन ऋग्वेद में दिया गया है।

“ओ हि वर्तन्ते रथ्येव चक्रान्यमुप तिष्ठन्त रायः।”¹⁸

अर्थात् जिस प्रकार रथ का पहिया अस्थिर रहता है कभी ऊपर तो कभी नीचे होता है उसी प्रकार ‘राय’ है जो परिवर्तित होती ही रहती है। कभी किसी व्यक्ति के पास तो कभी अन्य के पास होती है। इसके पश्चात् वेदों में स्तेय और अपरिग्रह का उल्लेख मिलता है।

“ईशावास्यमिद सर्वं यत्किं च जगत्यां जगत्।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।”¹⁹

अर्थात् इस संसार में जड़, चेतन सब कुछ परमात्मा का रचाया हुआ है। इसलिए उसके द्वारा जो हमें सौंपा गया है केवल उसी का उपयोग करें। अनावश्यक पदार्थों का लालच छोड़ दें। क्योंकि यह धन किसी व्यक्ति विशेष का नहीं अथवा उस परब्रह्म का है। जिस पर हमारा कोई आधिपत्य नहीं है। इसके साथ आगे ईश्वर प्राणिधान का विवरण मिलता है।

“कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत समाः।

खं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।”²⁰

अर्थात् परमात्मा द्वारा रचाये इस अनुशासित जगत् में मनुष्य की आयु सौ वर्ष बताई गई है। मनुष्य जब इस जगत् में अनुशासित होकर कर्म करता है तो उन कर्मों में लिप्त नहीं होता। परमात्मा का संदेश है कि इस प्रकार जीवन जीने से विकार मुक्त रहते हैं। इस प्रकार साधक को परम कल्याण हेतु अनुशासित कर्मों के साथ जीवन जीने का मार्ग सुनिश्चित करना चाहिए। यजुर्वेद के एक मन्त्र में व्रत का वर्णन मिलता है जिसकी तुलना स्वामी दयानन्द सरस्वती ने यम से की है, व उसके अर्थ का भी निरूपण किया है।

“व्रतेन दीक्षायाप्नोति दीक्षायाप्नोति दक्षिणाम्।

दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते।।”²¹

अर्थात् किसी भी व्रत को निष्ठापूर्वक करने व उसकी आराधना करने से साधक को दीक्षा प्राप्त होती है। दीक्षा में ईश्वर के द्वारा दक्षिणा प्राप्त होती है। जिसमें सत्याचरण का परमार्थ सुख प्राप्त होता है। इस व्रत को यम के समकक्ष रख सकते हैं क्योंकि पातंजल योग सूत्र में यम को महाव्रत की संज्ञा दी गई है।

निष्कर्ष — इस प्रकार हम देखते हैं कि योग के संकेतों का वर्णन वेदों से प्राप्त होता है। वेदों की रचना स्वयं परमात्मा के द्वारा हुई है। परमात्मा की इस कृति में आदि दैविक, आदि भौतिक एवं आध्यात्मिक तीनों प्रकार के भावों का समावेश है। वेद एक ऐसी कृति या रचना है जिसमें समस्त विधाओं का वर्णन मिलता है। प्रत्येक कार्य के पीछे एक कारण होता है। अर्थात् जब परमात्मा ने इन वेदों की रचना की होगी तो परमात्मा के गुण, भाव भी इस रचना में अवश्य होंगे और वेदों के कारण भाव तो योग सिद्धि के उपरान्त ही बने होंगे। क्योंकि अनेक ऋषिमुनियों ने योग साधना के माध्यम से चित्त को एकाग्र किया और इसके बाद वैदिक मंत्रों की उपासना की। तब उन्हें एक सूत्र में पिरोने का कार्य किया। इसलिए योग साधना का वर्णन वेदों में कई स्थानों पर देखा जाता है। योग कोई नया अनुसंधान नहीं है यह तो पुरातन है जो वैदिक काल से चला आ रहा है यह मोक्ष प्राप्ति सर्वोत्तम साधना है। अतः वेदों में वर्णित योग अन्तर्विज्ञान है जो अध्यात्म की अनुभूति कराता है।

सन्दर्भ सूची —

1. योगाङ्क, गीताप्रेस, गोरखपुर, चौदहवाँ संस्करण, पृ.130
2. S.N. Gupta, Philosophical Essays, p.179

3. Swami Sankrananda, The Regvedic Culture of the Pre-Historic Indus, Ramkrishna Vedauta Math, Culcutta, p.38
4. ऋग्वेद, 1/38/11
5. वही, 8/100/5
6. स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती, वेदों में योग विद्या, यौगिक शोध संस्थान, योगधाम, आर्यनगर, ज्वालापुर, हरिद्वार, पृ.106
7. पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, यजुर्वेद संहिता, युगनिर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, गायत्री तपोभूमि, मथुरा, 6/14
8. वही, 11/5
9. स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती, वेदों में योग, यौगिक शोध संस्थान, योग धाम, आर्यनगर, ज्वालापुर, हरिद्वार, पृ.51
10. पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, ऋग्वेद संहिता, युगनिर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, गायत्री तपोभूमि, मथुरा, 1/18/7
11. वही, 1/5/3,
12. वही, 1/30/7
13. वही, 8/44/23
14. डॉ. कामख्या कुमार, योग महाविज्ञान, स्टैंडर्ड पब्लिशर्स, नई दिल्ली, पृ.55
15. राजकुमार पाण्डेय, भारतीय योग परम्परा के विविध आयाम, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृ.44
16. डॉ. कामख्या कुमार, योग महाविज्ञान, स्टैंडर्ड पब्लिशर्स, नई दिल्ली, पृ.55
17. राजकुमार पाण्डेय, भारतीय योग परम्परा के विविध आयाम, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृ.44
18. पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, ऋग्वेद संहिता, युगनिर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, गायत्री तपोभूमि, मथुरा, 10/117/5
19. पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, यजुर्वेद संहिता, युगनिर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, गायत्री तपोभूमि, मथुरा, 40/1
20. वही, 40/2
21. वही, 19/3

